भक्तिन के संस्कार ऐसे हैं कि वह कारागार से ठीक वैसे ही डरती है, जैसे यमलोक से। ऊँची दीवार दिखते ही मानो, वह आँख मूँदकर बेहोश हो जाना चाहती है। उसकी इसी कमजोरी के कारण लोग मेरे जेल जाने की संभावना बता-बताकर उसे चिढ़ाते रहते हैं। वह डरती बिल्कुल नहीं, यह कहना असत्य होगा; लेकिन डर से भी अधिक महत्त्व मेरे साथ का ठहरता है। चुपचाप वह मुझसे पूछने लगती है कि कै वह अपनी धोती साबुन से साफ कर ले ताकि मुझे वहाँ उसके लिए लज्जित न होना पड़े। और क्या-क्या सामान बाँध ले, जिससे मुझे वहाँ किसी प्रकार की कोई असुविधा न हो। ऐसी यात्रा में किसी को भी किसी के साथ जाने का अधिकार नहीं है, यह आश्वासन भक्तिन के लिए शायद कोई मायने नहीं रखता। वह मेरे न जाने की कल्पना से इतनी ज्यादा प्रसन्न नहीं होती, जितनी कि मेरे साथ न जा सकने की संभावना से अपमानित। भला ऐसा अंधेर कहीं हो सकता है। जहाँ मालिक वहाँ नौकर -मालिक को ले जाकर जेल में बंद कर देने में इतना अन्याय नहीं; जितना कि नौकर को अकेले मुक्त छोड़ देने में। ऐसा अन्याय होने पर भक्तिन को बड़े लाट तक लड़ना पड़ेगा। किसी की माई यदि आजतक बड़े लाट तक नहीं लड़ी, तो न सही; पर भक्तिन का तो बिना लड़े काम ही नहीं चल सकता।

ऐसे विषम प्रतिद्वंद्वियों से लड़ाई तो कल्पना में भी दुर्लभ है।

मैं अक्सर सोचती हूँ कि जब कभी ऐसा बुलावा आ पहुँचेगा, जिसमें न तो धोती साफ करने का अवकाश रहेगा, न सामान बाँधने का, न भक्तिन को रुकने का अधिकार होगा और न ही मुझे रोकने का, तब चिर विदा के अंतिम समय में यह देहातिन वृद्धा क्या करेगी और मैं क्या करूँगी?

भक्तिन की यह कहानी अधूरी है; लेकिन उसे खोकर मैं इसे पूरी नहीं करना चाहती।